



आत्म-उत्तरदायित्व का दर्शन: वर्तमान सामाजिक संरचना में जैन कर्म सिद्धांत की प्रासंगिकता

गोपाल कुमार

सहायक प्राध्यापक, दर्शनशास्त्र विभाग, श्री अरविन्द महिला कॉलेज, पटना (पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना)

DOI : <https://doi.org/10.5281/zenodo.20688402>

1. प्रस्तावना

भारतीय दार्शनिक चिंतन की धारा में 'कर्म सिद्धांत' एक ऐसा आधारभूत स्तंभ है, जिसने सदियों से मानवीय नैतिकता और जीवन-दृष्टि को दिशा दी है। भारतीय दर्शन के आस्तिक और नास्तिक दोनों परंपराओं में कर्म की अवधारणा को केंद्रीय स्थान प्राप्त है, जो 'जैसा बोओगे, वैसा काटोगे' के सार्वभौमिक न्याय सिद्धांत पर आधारित है। जहाँ अन्य भारतीय दर्शन कर्म को एक अदृश्य संस्कार, अपूर्व या केवल मानसिक छाप के रूप में स्वीकार करते हैं, वहीं जैन दर्शन की मौलिकता इसे एक 'पुद्गल' (Matter) अर्थात् भौतिक तत्व के रूप में परिभाषित करने में निहित है।ⁱ जैन मनीषा के अनुसार, कर्म कोई अमूर्त शक्ति नहीं, बल्कि सूक्ष्म परमाणु हैं जो आत्मा के साथ वैसे ही सम्बद्ध हो जाते हैं जैसे अग्नि लोहे के गोले में प्रविष्ट हो जाती है।ⁱⁱ

जैन दर्शन की यह दृष्टि जीव (आत्मा) और अजीव (जड़ तत्व) के गहन अंतर्संबंधों की व्याख्या करती है। जब आत्मा राग-द्वेष और कषायों (क्रोध, मान, माया, लोभ) से विचलित होती है, तब ब्रह्मांड में व्याप्त 'कार्माण-वर्गणाएँ' उसकी ओर आकर्षित होती हैं और आत्मा के प्रदेशों के साथ एक अनूठा बंध स्थापित करती हैं। यह प्रक्रिया 'आस्रव' और 'बंध' के रूप में जानी जाती है।ⁱⁱⁱ यहाँ 'आत्म-उत्तरदायित्व' का दर्शन अत्यंत प्रखर होकर उभरता है, क्योंकि यह स्पष्ट करता है कि आत्मा स्वयं अपनी अशुद्ध प्रवृत्तियों के माध्यम से इन कर्म-पुद्गलों को निमंत्रण देती है। अतः, मनुष्य के सुख-दुख, उत्थान-पतन और वर्तमान परिस्थितियों के पीछे किसी दैवीय इच्छा या आकस्मिक नियति का हाथ न होकर, स्वयं उसके अतीत और वर्तमान के 'भावों' का परिणाम है।

वर्तमान सामाजिक संरचना में इस सिद्धांत की प्रासंगिकता पहले से कहीं अधिक बढ़ गई है। आज का मनुष्य सूचना क्रांति और भौतिक सुखों के अंबार के बीच भी अभूतपूर्व मानसिक तनाव, अवसाद और अस्तित्वगत संकट



(Existential Crisis) से जूझ रहा है। आधुनिक समाज की एक बड़ी विडंबना 'उत्तरदायित्व से पलायन' (Escapism from Responsibility) है। व्यक्ति अपनी असफलताओं के लिए अक्सर व्यवस्था, समाज, माता-पिता या अपने भाग्य को दोष देने की प्रवृत्ति रखता है। यह 'विक्टिम मेंटलिटी' (पीड़ित बोध) उसे आत्म-सुधार के मार्ग से भटका देती है।^{iv}

प्रस्तुत आलेख का मुख्य उद्देश्य यह सिद्ध करना है कि जैन कर्म सिद्धांत केवल एक प्राचीन धार्मिक विश्वास नहीं है, बल्कि यह 'आत्म-सशक्तिकरण' का एक उत्कृष्ट मनोवैज्ञानिक उपकरण है। यदि व्यक्ति यह स्वीकार कर ले कि "मैं ही अपने भाग्य का विधाता हूँ" (अप्पा कत्ता विकत्ता य), तो वह अपनी वर्तमान समस्याओं का समाधान बाह्य जगत में खोजने के बजाय अपने आंतरिक रूपांतरण में खोजेगा।^v यह आलेख 'संवर' (निरोध) और 'निर्जरा' (क्षय) की प्रक्रियाओं के माध्यम से तनाव प्रबंधन और एक उत्तरदायी सामाजिक संरचना के निर्माण की संभावनाओं को तलाशने का एक प्रयास है।

2. जैन कर्म सिद्धांत: दार्शनिक एवं वैज्ञानिक विश्लेषण

जैन दर्शन में कर्म की अवधारणा अन्य भारतीय दर्शनों की तुलना में अत्यंत विशिष्ट और वैज्ञानिक है। जहाँ अन्य दर्शन कर्म को अदृश्य संस्कार या केवल एक मानसिक छाप मानते हैं, वहीं जैन दर्शन कर्म को 'पुद्गल' (Matter) के रूप में स्वीकार करता है। यह एक भौतिक ऊर्जा है जो सूक्ष्म अणुओं के रूप में संपूर्ण ब्रह्मांड (लोक) में व्याप्त है। इन सूक्ष्म अणुओं को 'कार्माण-वर्गणा' कहा जाता है।^{vi}

कर्म का स्वरूप: जीव और अजीव का संयोग

जैन दर्शन के अनुसार, जीव (आत्मा) स्वभाव से अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख और अनंत वीर्य (शक्ति) से युक्त है। किंतु अनादि काल से यह कर्म-पुद्गलों से आच्छादित है। जब आत्मा राग-द्वेष, क्रोध, मान, माया या लोभ (कषाय) जैसे विकारों से युक्त होती है, तो वह कार्माण-वर्गणाओं को अपनी ओर आकर्षित करती है। यह प्रक्रिया वैसी ही है जैसे तेल से चुपड़े हुए शरीर पर धूल के कण चिपक जाते हैं।^{vii} आत्मा और कर्म का यह मिलाप 'क्षीर-नीर' (दूध और पानी) की भाँति इतना सघन होता है कि संसारी अवस्था में दोनों को पृथक देखना कठिन हो जाता है। यही वह बिंदु है जहाँ 'आत्म-उत्तरदायित्व' का दर्शन जन्म लेता है; क्योंकि कर्म स्वतः नहीं चिपकते, बल्कि आत्मा के अपने 'भाव' उन्हें आमंत्रित करते हैं।^{viii}

कर्म-बंध की प्रक्रिया: आस्रव, बंध और उसके सोपान



कर्म के संचय की प्रक्रिया को समझने के लिए जैन आचार्यों ने इसे चार भागों में वर्गीकृत किया है, जिसे 'बंध' के चार प्रकार कहा जाता है:

- प्रकृति बंध: कर्म का स्वभाव (जैसे- ज्ञान को रोकना)।
- स्थिति बंध: कर्म की समय-सीमा (वह आत्मा के साथ कितनी अवधि तक रहेगा)।
- अनुभाग बंध: कर्म के फल देने की शक्ति या तीव्रता।
- प्रदेश बंध: कर्म-पुद्गलों की वह मात्रा जो आत्मा के प्रदेशों के साथ सम्बद्ध होती है।

इनमें 'स्थिति' और 'अनुभाग' बंध का मुख्य कारण 'कषाय' हैं, जबकि 'प्रकृति' और 'प्रदेश' बंध का कारण 'योग' (मन, वचन और काया की चंचलता) है।^{ix} यह विश्लेषण स्पष्ट करता है कि मनुष्य की मानसिक स्थिति ही उसके भविष्य के सुख-दुख की तीव्रता को निर्धारित करती है।

घातिया और अघातिया कर्म: एक मनोवैज्ञानिक वर्गीकरण

जैन दर्शन कर्मों को दो प्रमुख श्रेणियों में विभाजित करता है, जो मानव जीवन की आंतरिक और बाह्य संरचना को स्पष्ट करते हैं:

- i) घातिया कर्म: ये आत्मा के मूल गुणों का घात करते हैं। इसमें 'मोहनीय कर्म' सबसे शक्तिशाली है, जो मनुष्य की विवेक शक्ति को नष्ट कर उसे भ्रमित रखता है।^x 'ज्ञानावरणीय' और 'दर्शनावरणीय' कर्म ज्ञान की सीमाओं को संकुचित करते हैं।
- ii) अघातिया कर्म: ये कर्म आत्मा के गुणों को नष्ट नहीं करते, बल्कि बाह्य शरीर, आयु, गोत्र और सुख-दुख की परिस्थितियाँ (वेदनीय) प्रदान करते हैं।

वैज्ञानिक धरातल पर कर्म सिद्धांत

आधुनिक विज्ञान के 'कार्य-कारण संबंध' और 'ऊर्जा के संरक्षण के नियम' जैन कर्म सिद्धांत के निकट प्रतीत होते हैं। यदि हम कार्माण-वर्गणाओं को एक प्रकार की 'सूक्ष्म ऊर्जा' (Micro-energy) मानें, तो प्रत्येक विचार और क्रिया एक कंपन उत्पन्न करती है, जो ब्रह्मांडीय ऊर्जा के साथ अंतःक्रिया करती है।^{xi} यह एक 'आध्यात्मिक पारिस्थितिकी' (Spiritual Ecology) का निर्माण करता है, जहाँ प्रत्येक क्रिया का समान और विपरीत प्रभाव (Reaction) सुनिश्चित

है। अतः, यह सिद्धांत अंधविश्वास नहीं, बल्कि एक 'नैतिक भौतिकवाद' (Ethical Materialism) है जो व्यक्ति को हर क्षण सचेत रहने की प्रेरणा देता है।

3. आत्म-उत्तरदायित्व: 'अप्या कत्ता विकत्ता य'

जैन दर्शन का संपूर्ण नैतिक ढाँचा 'आत्म-उत्तरदायित्व' (Self-Responsibility) के सिद्धांत पर टिका है। जहाँ विश्व के कई धर्म और दर्शन मनुष्य के भाग्य का नियंत्रण किसी 'ईश्वर' या 'परम सत्ता' के हाथ में सौंप देते हैं, वहीं जैन परंपरा स्पष्ट घोषणा करती है "अप्या कत्ता विकत्ता य दुहाण य सुहाण य" (आत्मा ही अपने सुखों और दुखों की कर्ता और भोक्ता है)।^{xii} यह सूत्र मनुष्य को एक 'बेचारे' प्राणी के स्थान पर एक सशक्त 'स्रष्टा' के रूप में प्रतिष्ठित करता है।

भाग्य बनाम पुरुषार्थ

जैन कर्म सिद्धांत में 'नियतिवाद' (Fatalism) के लिए कोई स्थान नहीं है। यद्यपि पूर्व संचित कर्म 'उदय' (Fruition) में आकर वर्तमान परिस्थितियों को प्रभावित करते हैं, किंतु जैन दर्शन 'पुरुषार्थ' को सर्वोपरि मानता है।^{xiii} आत्मा के पास यह शक्ति है कि वह 'उदीरणा' (कर्मों को समय से पहले उदय में लाना), 'संक्रमण' (प्रकृति बदलना) और 'अपवर्तना' (अवधि कम करना) जैसी प्रक्रियाओं के माध्यम से अपने प्रारब्ध को बदल सके।^{xiv} यह दार्शनिक अवधारणा सिद्ध करती है कि वर्तमान केवल अतीत का दास नहीं है, बल्कि वर्तमान के सचेत पुरुषार्थ से भविष्य को पुनः लिखा जा सकता है।

इच्छा स्वातंत्र्य और नैतिक चेतना

आत्म-उत्तरदायित्व का यह दर्शन 'इच्छा स्वातंत्र्य' (Free Will) पर आधारित है। जब व्यक्ति यह समझ लेता है कि उसके साथ जो कुछ भी घटित हो रहा है, उसका बीज उसने स्वयं बोया था, तो वह बाह्य जगत के प्रति 'शिकायत' (Complaining) करना बंद कर देता है।^{xv} यह बोध उसे 'विक्टिम मेंटलिटी' से बाहर निकालकर 'महारथी' की भूमिका में ले आता है। यहाँ उत्तरदायित्व का अर्थ केवल कार्यों का फल भोगना नहीं है, बल्कि भविष्य के प्रति सजग रहना भी है।

सामाजिक उत्तरदायित्व का आधार

आत्म-उत्तरदायित्व का यह व्यक्तिगत बोध ही 'सामाजिक उत्तरदायित्व' की नींव बनता है। यदि प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को अपने कार्यों के लिए जवाबदेह मानने लगे, तो सामाजिक अपराध, भ्रष्टाचार और अनैतिकता में स्वतः कमी



आएगी।^{xvi} जैन दर्शन के अनुसार, दूसरों को कष्ट पहुँचाना वास्तव में स्वयं की आत्मा को बंधित करना है। अतः, आत्म-हित और पर-हित यहाँ एक दूसरे के पूरक बन जाते हैं।

मनोवैज्ञानिक सुदृढ़ता

वर्तमान के मानसिक स्वास्थ्य संकट के दौर में यह सिद्धांत एक 'थेरेपी' की तरह कार्य करता है। यह व्यक्ति को सिखाता है कि दुख के समय विलाप करने के बजाय 'समता' (Equanimity) का भाव रखें, क्योंकि यह दुख उसके अपने ही पुराने कर्मों की 'निर्जरा' (झड़ना) है।^{xvii} यह दृष्टिकोण व्यक्ति के भीतर एक अदम्य साहस और आंतरिक शांति पैदा करता है, जो आधुनिक जीवन की आपाधापी में नितांत आवश्यक है।

4. वर्तमान सामाजिक संरचना और कर्म सिद्धांत की भूमिका

आज की जटिल सामाजिक संरचना में, जहाँ व्यक्ति बाह्य उपलब्धियों और तकनीकी विकास के शिखर पर है, वहीं आंतरिक शांति और नैतिक स्थिरता के धरातल पर वह अत्यंत रिक्त अनुभव कर रहा है। जैन कर्म सिद्धांत की प्रासंगिकता यहाँ केवल व्यक्तिगत मोक्ष तक सीमित नहीं रहती, बल्कि एक स्वस्थ और संतुलित समाज के निर्माण में 'कैटेलिस्ट' (उत्प्रेरक) का कार्य करती है।^{xviii}

मानसिक स्वास्थ्य और संवेग प्रबंधन (Emotional Management)

आधुनिक समाज 'अवसाद' की महामारी से जूझ रहा है। इसका एक बड़ा कारण 'अनुकूल फल' की तीव्र आकांक्षा और 'प्रतिकूल परिस्थिति' को स्वीकार न कर पाना है। जैन दर्शन का 'समता' (Equanimity) का सिद्धांत, जो कर्म के 'उदय' की समझ पर आधारित है, एक सशक्त मनोवैज्ञानिक उपचार प्रदान करता है।^{xix} जब व्यक्ति यह बोध प्राप्त कर लेता है कि वर्तमान का संकट उसके अपने ही पूर्व संचित कर्मों की 'निर्जरा' (क्षय) का अवसर है, तो वह विचलित होने के बजाय धैर्य और संतुलन बनाए रखता है। यह 'रिएक्टिव' (प्रतिक्रियात्मक) व्यवहार को 'रिस्पॉन्सिव' (उत्तरदायी) व्यवहार में बदल देता है।^{xx}

उपभोक्तावाद बनाम अपरिग्रह (Consumerism vs. Non-attachment)

वर्तमान सामाजिक संरचना 'अधिकतम उपभोग' (Maximum Consumption) की नींव पर खड़ी है, जिससे ईर्ष्या, प्रतिस्पर्धा और संसाधनों का असमान वितरण बढ़ा है। जैन कर्म सिद्धांत के अनुसार, भौतिक वस्तुओं के प्रति तीव्र 'मूर्च्छा' (Attachment) ही 'आस्रव' (Karmic inflow) का द्वार है।^{xxi} 'अपरिग्रह' का सिद्धांत न केवल आत्मा को भारी होने से बचाता है, बल्कि सामाजिक स्तर पर आर्थिक विषमता को कम करने का मार्ग प्रशस्त करता है। यह



एक ऐसी जीवन शैली का आह्वान करता है जहाँ व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं को सीमित कर 'लोक-कल्याण' की ओर प्रवृत्त होता है।

पारिस्थितिक चेतना (Ecological Consciousness)

जैन दर्शन का प्रसिद्ध सूत्र "परस्परपग्रहो जीवानाम्" (सभी जीव एक-दूसरे के उपकारक हैं) आधुनिक 'इकोलॉजी' का मूल मंत्र है।^{xxii} वर्तमान पर्यावरणीय संकट का मुख्य कारण मनुष्य द्वारा प्रकृति को केवल 'भोग की वस्तु' समझना है। जैन कर्म-विज्ञान चेतावनी देता है कि सूक्ष्म जीवों या वनस्पति की हिंसा भी आत्मा को 'अशुभ कर्मों' से भारी बनाती है। यह चेतना मनुष्य को प्रकृति के प्रति 'शोषक' (Exploiter) के बजाय 'संरक्षक' (Protector) बनाती है।^{xxiii}

सामाजिक न्याय और अहिंसक सह-अस्तित्व

एक न्यायपूर्ण समाज के लिए 'स्व-अनुशासन' अनिवार्य है। जब व्यक्ति कर्म की सूक्ष्मता को समझता है, तो वह 'अनेकांतवाद' के माध्यम से दूसरों के विचारों के प्रति सहिष्णु बनता है। यह 'वैचारिक अहिंसा' (Thoughtful Non-violence) ही वर्तमान के ध्रुवीकृत समाज में शांति और सांप्रदायिक सौहार्द का आधार बन सकती है।^{xxiv}

5. कर्म मुक्ति का मार्ग: आधुनिक जीवन की पद्धतियाँ

जैन कर्म सिद्धांत केवल समस्याओं का विश्लेषण नहीं करता, बल्कि उनसे मुक्ति का एक अत्यंत व्यावहारिक और सोपानबद्ध मार्ग भी प्रशस्त करता है। आधुनिक युग में, जहाँ 'बर्नआउट' और 'मेंटल फटीग' (मानसिक थकान) सामान्य हो गए हैं, जैन दर्शन की 'संवर' और 'निर्जरा' की प्रक्रियाएँ एक 'डिटॉक्सिफिकेशन' (विषाक्तता निवारण) पद्धति के रूप में कार्य करती हैं।^{xxv}

संवर: मानसिक प्रदूषण का निरोध

संवर का अर्थ है आत्मा की ओर आते हुए नए कर्म-पुद्गलों को रोकना। आधुनिक संदर्भ में इसे 'माइंडफुलनेस' (सजगता) और 'डिजिटल डिटॉक्स' से जोड़ा जा सकता है।^{xxvi}

- **समिति और गुप्ति:** मन, वचन और काया की प्रवृत्तियों पर नियंत्रण (गुप्ति) और अपनी क्रियाओं में सावधानी (समिति) रखना। आज के 'हाइपर-रिएक्टिव' समाज में, जहाँ सोशल मीडिया पर तुरंत प्रतिक्रिया देने का दबाव रहता है, संवर का अभ्यास व्यक्ति को 'पॉज' (ठहराव) लेना सिखाता है।^{xxvii} यह मानसिक ऊर्जा के अपव्यय को रोकता है।



निर्जरा: संचित विकारों का शोधन

निर्जरा का अर्थ है आत्मा से पहले से चिपके हुए कर्मों को अलग करना। इसे जैन दर्शन में 'तप' के माध्यम से संभव माना गया है।^{xxviii}

- **बाह्य तप:** उपवास और रस-परित्याग। आधुनिक विज्ञान भी 'इंटरमिटेंट फास्टिंग' (Intermittent Fasting) के शारीरिक और मानसिक लाभों को स्वीकार कर रहा है। यह आत्म-अनुशासन की पहली सीढ़ी है।
- **अभ्यंतर तप:** इसमें 'स्वाध्याय' (Self-study) और 'ध्यान' (Meditation) सबसे महत्वपूर्ण हैं। स्वाध्याय के माध्यम से व्यक्ति अपने वैचारिक दोषों को पहचानता है, और ध्यान के माध्यम से उन गहरे संस्कारों (Karmic patterns) को मिटाता है जो तनाव का मूल कारण हैं।^{xxix}

सम्यकत्व: संतुलित जीवन का आधार

जैन दर्शन के 'रत्नत्रय' (सम्यक् दर्शन, ज्ञान और चारित्र) आधुनिक जीवन में 'इंटीग्रिटी' (निष्ठा) और 'होलिस्टिक लिविंग' का आधार बन सकते हैं।^{xxx}

- **सम्यक् दर्शन:** सही दृष्टिकोण (Right Perspective)। वर्तमान की 'तुलनापरक संस्कृति' (Comparison Culture) में स्वयं के स्वरूप को पहचानना ही वास्तविक शांति है।
- **सम्यक् ज्ञान:** तथ्यों और मूल्यों के बीच भेद करना।
- **सम्यक् चारित्र:** अपने ज्ञान को आचरण में उतारना।

आधुनिक जीवन पद्धति में अनुप्रयोग

कर्म मुक्ति का यह मार्ग कंदराओं में रहने तक सीमित नहीं है। एक गृहस्थ या कामकाजी व्यक्ति 'अणुव्रतों' (छोटे संकल्पों) के माध्यम से भी कर्मों की निर्जरा कर सकता है।^{xxxi} अपनी व्यावसायिक नैतिकता (Professional Ethics) को बनाए रखना, अपरिग्रह का अभ्यास करना और अहिंसक संवाद करना ही आधुनिक 'कर्म-निर्जरा' की श्रेष्ठ पद्धतियाँ हैं।

6. निष्कर्ष (Conclusion)

प्रस्तुत शोध के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि जैन 'कर्म सिद्धांत' मात्र एक प्राचीन आध्यात्मिक विमर्श नहीं, बल्कि 'मानव व्यवहार' और 'नैतिक भौतिकवाद' का एक सूक्ष्म विज्ञान है। जैन दर्शन की सबसे बड़ी उपलब्धि कर्म

को 'पुद्गल' के रूप में परिभाषित करना है, जो इसे पूर्णतः तर्कसंगत और कार्य-कारण (Causality) के सिद्धांतों पर आधारित बनाता है। इस आलेख में यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि कर्म-बंध की प्रक्रिया कोई दैवीय दंड नहीं, बल्कि आत्मा के अपने राग-द्वेषपूर्ण स्पंदनों का भौतिक परिणाम है।

इस आलेख का मुख्य निष्कर्ष यह है कि 'आत्म-उत्तरदायित्व' का बोध ही वर्तमान सामाजिक और मानसिक संकटों का एकमात्र स्थाई समाधान है। आज का समाज जिस 'विक्टिम मेंटलिटी' और 'उत्तरदायित्व के संकट' से जूझ रहा है, वहाँ जैन दर्शन का "अप्या कत्ता विकत्ता य" का उद्घोष व्यक्ति को पुनः अपनी शक्तियों का केंद्र बनाता है। यह दर्शन व्यक्ति को यह विश्वास दिलाता है कि यदि वह अपने दुखों का निर्माता स्वयं है, तो वह उनके अंत और सुखों के सृजन का सामर्थ्य भी स्वयं में ही रखता है।

वर्तमान सामाजिक संरचना के संदर्भ में, 'संवर' और 'निर्जरा' की पद्धतियाँ केवल मुमुक्षुओं के लिए नहीं, बल्कि आधुनिक 'स्ट्रेस मैनेजमेंट' और 'इकोलॉजिकल सस्टेनेबिलिटी' के लिए अनिवार्य हैं। 'परस्परोपग्रहो जीवानाम्' का भाव न केवल पर्यावरण की रक्षा करता है, बल्कि 'अनेकांतवाद' के माध्यम से एक सहिष्णु और अहिंसक समाज की नींव रखता है।

अतः, निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि जैन कर्म सिद्धांत व्यक्ति को 'बाह्य-निर्भरता' से मुक्त कर 'स्व-निर्भरता' और 'आत्म-अनुशासन' की ओर ले जाता है। यह एक ऐसे समाज की कल्पना करता है जहाँ प्रत्येक व्यक्ति अपने विचारों और कार्यों के प्रति सजग है। यदि आधुनिक मनुष्य इस 'कर्म-विज्ञान' को अपनी जीवन-पद्धति का हिस्सा बना ले, तो न केवल व्यक्तिगत मानसिक शांति प्राप्त की जा सकती है, बल्कि एक न्यायपूर्ण और संतुलित वैश्विक व्यवस्था का निर्माण भी संभव है।

संदर्भ सूची:

ⁱ सुखलाल संघवी, *जैन दर्शन*, पार्श्वनाथ विद्याभ्रम शोध संस्थान, वाराणसी, पृष्ठ 112-115 ।

ⁱⁱ पद्मनाभ जैनि, *द जैन पाथ ऑफ प्यूरिफिकेशन*, यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस, पृष्ठ 101-105 ।

ⁱⁱⁱ उमास्वामी, *तत्त्वार्थसूत्र*, अध्याय 6, सूत्र 1-2 ।

^{iv} नथमल टाटिया, *स्टडीज इन जैन फिलॉसफी*, पी.वी. रिसर्च इंस्टीट्यूट, पृष्ठ 235 ।

^v कुन्दकुन्दाचार्य, *समयसार*, गाथा 164 ।

^{vi} उमास्वामी, वही, अध्याय 8, सूत्र 2-3 ।

^{vii} मोहनलाल मेहता, *जैन मनोविज्ञान*, पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी, पृष्ठ 85-92 ।



- viii कुन्दकुन्दाचार्य, वही, गाथा 164-166 ।
- ix दयानंद भार्गव, *जैन एथिक्स*, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पृष्ठ 45 ।
x नथमल टाटिया, वही, पृष्ठ 220-225 ।
- xi जस्टिस टी.के. टुकुल, *कंपोडियम ऑफ जैनिज्म*, कर्नाटक यूनिवर्सिटी, पृष्ठ 110 ।
xii कुन्दकुन्दाचार्य, वही, गाथा 312-313 ।
- xiii आचार्य महाप्रज्ञ, *जैन दर्शन: मनन और मीमांसा*, आदर्श साहित्य संघ, चुरू, पृष्ठ 142-145 ।
- xiv उमास्वामी, वही, अध्याय 9, सूत्र 3-4 ।
- xv नथमल टाटिया, वही, पृष्ठ 240 ।
- xvi पद्मनाभ जैनि, *वही*, पृष्ठ 118-120 ।
- xvii जस्टिस टी.के. टुकुल, वही, पृष्ठ 132-135 ।
- xviii आचार्य महाप्रज्ञ, वही, पृष्ठ 158-160 ।
- xix नथमल टाटिया, वही, पृष्ठ 252 ।
- xx मोहनलाल मेहता, वही, पृष्ठ 110-112 ।
- xxi उमास्वामी, वही, अध्याय 7, सूत्र 12-13 ।
- xxii उमास्वामी, वही, अध्याय 5, सूत्र 21 ।
- xxiii पद्मनाभ जैनि, वही, पृष्ठ 145-148 ।
- xxiv दयानंद भार्गव, वही, पृष्ठ 62-65 ।
- xxv आचार्य महाप्रज्ञ, वही, पृष्ठ 172-175 ।
- xxvi उमास्वामी, वही, अध्याय 9, सूत्र 1-2 ।
- xxvii नथमल टाटिया, वही, पृष्ठ 268 ।
- xxviii कुन्दकुन्दाचार्य, वही, गाथा 190-192 ।
- xxix मोहनलाल मेहता, वही, पृष्ठ 125-128 ।
- xxx उमास्वामी, वही, अध्याय 1, सूत्र 1 ।
- xxxi पद्मनाभ जैनि, वही, पृष्ठ 160-165 ।